वायरसों के साथ सह अस्तित्व

पी. बालाराम

एड्स का पहला ब्यौरा 1981 में सामने आया था। 1984 तक यह स्पष्ट हो गया था कि एड्स का कारक एक रिट्रोवायरस है। इसे एच.आई.वी. नाम दिया गया। दो दशकों तक एड्स सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बंधी चर्चाओं के केंद्र में रहा। कई मर्तबा तो ऐसा भी हुआ है कि एड्स के संभावित असर के चलते लोगों का ध्यान उन आम बीमारियों से हट गया जो कहीं ज़्यादा व्यापक हैं। इस वजह से इन बीमारियों पर खर्च होने वाला धन भी एड्स में खप गया।

1988 में नोबल विजेताओं के एक सम्मेलन को संबोधित करते हुए जोशुआ लेडरबर्ग ने कहा था - "एड्स की बढ़ती महामारी ने दुनिया को हिला दिया है। आम तौर पर अभी यह नहीं समझा गया है कि यह एक कुदरती, लगभग पूर्वानुमान योग्य घटना ही है। हमें ऐसे संकटों का सामना आगे भी करना होगा और यदि हम प्रकृति में अपनी प्रजाति के स्थान की वास्तविकताओं पर पकड़ नहीं बनाते, तो हम ऐसे संकटों से निपटने में और भ्रमित होंगे।" लेडरबर्ग ने हमारे और सूक्ष्मजीवों के परस्पर सम्बंध की समस्या को काफी स्पष्टता से सामने रखा था - "मानव बुद्धि, संस्कृति और टेक्नालॉजी ने शेष लगभग समस्त वनस्पति व जंतु प्रजातियों को प्रतिस्पर्धा में बहुत पीछे छोड़ दिया है। मगर हम इस बात को लेकर मुगालते में हैं कि हम सूक्ष्मजीवों पर राज कर सकते हैं। बैक्टीरिया और वायरस किसी राष्ट्रीय सरहद को नहीं पहचानते। इस कुदरती विकास की प्रतिस्पर्धा में यह कतई ज़रूरी नहीं कि विजेता हम ही रहें।"

1980 के दशक में, जब एड्स का भय चरम पर था, तब व्यक्त किए गए लेडरबर्ग के ये विचार आज और भी प्रासंगिक हैं जब एक और वायरस जन्य रोग सार्स हमारे सिर पर है। ऐसा प्रतीत होता है कि सार्स चीन के दक्षिणी प्रांत गुआंगडोंग से उभरा है। इसका पहला शिकार हांगकांग में दिखाई पड़ा। सार्स के लक्षण लगभग इंफ्लुएंज़ा के समान होते हैं और यह हवा से फैलने वाला रोग है। आज की दुनिया में सार्स तेज़ी से सुदूर पूर्व और उससे भी आगे तक फैल गया है। अमरीकी क्षेत्र में यह टोरंटो में देखा गया है। इस रोग की तेज़ रफ्तार दरअसल हवाई यात्राओं की वजह से संभव हुई है। संक्रमित व्यक्ति वायरस का भण्डार बन जाता है और फिर अपने साथ वायरस को भी देश-विदेश की सैर करवाता है।

सॉर्स की महामारी काबू में है। इसका श्रेय मूलतः दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में अपनाए गए कठोर स्वास्थ्य उपायों को जाता है। इन देशों का सख्त अनुशासन और संगठनात्मक तंत्र शायद अन्य विकासशील देशों में उपलब्ध न हो। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सार्स के सम्बंध में जीव वैज्ञानिकों व चिकित्सा वैज्ञानिकों ने जिस तेज़ी से काम किया है, उससे पता चलता है कि आधुनिक जीव वैज्ञानिक अनुसंधान के पास कितने शक्तिशाली साधन उपलब्ध हैं। सार्स के प्रथम मरीज़ फरवरी के अंत में पहचाने गए थे। 31 मार्च को हांगकांग के शोधकर्ताओं ने रिपोर्ट दी कि सार्स संक्रामक लगता है और इसका सूक्ष्मजीव कारक अस्पष्ट है। एक सप्ताह बाद 138 मरीज़ों के शारीरिक लक्षण, प्रयोगशाला की रिपोर्ट तथा रेडियोलॉजिकल रिपोर्ट प्रकाशित हो गई। इसके 10 दिन के अन्दर सार्स के कारक जीव को एक नए कोरोना वायरस के रूप में पहचान लिया गया।

इस वायरस की पहचान की खबर देते हुए जो शोधपत्र छपे उनके लेखक अटलांटा, हनोई, सिंगापुर, सैन फ्रांसिस्को, ताइपे, हांगकांग, बैंकॉक, हैम्बर्ग, फ्रैन्कफुर्ट, मार्बुर्ग, पैरिस और रॉटरडम के संस्थानों से सम्बंध थे। यह उपयोगी अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का जीता-जागता प्रमाण है। सार्स वायरस की पहचान होने के तीन सप्ताह के अंदर उसके पूरे जीनोम की शृंखला दो अलग-अलग समूहों ने प्रकाशित कर दी। यह किसी भी ऐसे ज्ञात वायरस की शृंखला से भिन्न है। इसका मतलब है कि यह जीव वैज्ञानिकों को अभी काफी समय व्यस्त रखेगा।

सार्स वायरस को समझने की गति बहुत तेज़ रही है। इससे नेटवर्किंग व सहयोग की उपयोगिता समझ में आती

है। दो दशक पूर्व एड्स के वायरस की पहचान होने में करीब दो वर्ष का समय लगा था। उस समय प्रतिस्पर्धा हावी हो गई थी सहयोग पर। दूसरी ओर, कम से कम अब तक, सार्स तो वैज्ञानिक सहयोग की मिसाल रहा है।

एड्स और सार्स दोनों ही वायरस के खतरे हैं जो तेज़ी से उभरे हैं। इससे हमें यह आभास मिलता है कि मानव प्रजाति बदलते सूक्ष्मजीवों के सामने कितने जोखिम में है। ये बदलते सूक्ष्मजीव हमारे प्रतिरक्षा तंत्र पर हावी हो सकते हैं।

अमेरिकन साइंस्टिट नामक पत्रिका में इन्फ्लुएंज़ा की समस्या पर एक आलेख छपा था। इसमें दावा किया गया था कि दुनिया एक महामारी की कगार पर है, जो बड़ी तादाद में लोगों की जान ले सकती है। इसके लेखकों आर.जी. वेबस्टर और इ.जे. वॉकर ने बीसवीं सदी में इन्फ्लुएंज़ा के प्रकोप का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि 1918-19 की महामारी ने करीब 50 करोड़ लोगों को प्रभावित किया था और लगभग 2-4 करोड़ लोगों की जान ली थी। इन्फ्लुएंज़ा वायरस की उत्पत्ति पक्षी वायरसों से हुई है। यह घरेलू सुअरों के माध्यम से इंसानों में पहुंचा है। वेबस्टर और वॉकर के मुताबिक ज़्यादातर महामारियां चीन में शुरू हुई थीं, जहां पक्षी, सुअर और लोग काफी करीब-करीब रहते हैं। हांगकांग में 1997 में फैला फ्लू एक पक्षी इंफ्लुएंज़ा वायरस का नतीजा था। उस समय सार्वजनिक स्वास्थ्य अधिकारियों द्वारा की गई त्वरित कार्यवाही की वजह से उस महामारी पर काबू पा लिया गया था। इन वायरसों में यह गुण होता है कि ये परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए ये प्रतिरक्षा तंत्र को चकमा दे देते हैं और टीका भी इनके खिलाफ कोई स्थाई कारगर रणनीति नहीं है।

पिछले दो वर्षों में जैव-आतंकवाद पर काफी चर्चा हुई है और कहा गया है कि जानबूझकर ऐसे रोगजनक सूक्ष्मजीव पर्यावरण में छोड़े जा सकते हैं। जैविक हथियारों के लिहाज़ से सबसे अग्रणी देश ही इसका खतरा सबसे ज़्यादा महसूस कर रहे हैं। यू.एस. के इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिसिन की रिपोर्ट 'माइक्रोबियल थ्रेट्स टु हेल्थ' (स्वास्थ्य पर सूक्ष्मजीवी खतरे) इन शब्दों से शुरु होती है - "संक्रामक रोग विकसित व विकासशील दोनों देशों में एक गंभीर बोझ बने हुए हैं। चाहे कुदरती हों या इरादतन छोड़े जाएं, संक्रमण बीमारियां पैदा कर सकते हैं, मौत के कारण बन सकते हैं और आबादियों, अर्थ व्यवस्थाओं और सरकारों को अस्त-व्यस्त कर सकते हैं। और चूंकि आज की दुनिया में राष्ट्रीय सरहदें ऐसे खतरों के लिए कोई बाधा नहीं है, इसलिए एक देश की समस्या जल्दी ही प्रत्येक देश की समस्या बन जाती है।"

प्रकृति से नित नए रोगकारक निकलकर इंसान के लिए खतरा बन सकते हैं। इंसान और सूक्ष्मजीवों के बीच संघर्ष में कौन हावी रहेगा? इस संदर्भ में लेडरबर्ग एक आशावादी बात करते हैं - "हमारी विकसित जैविक क्षमताओं में प्रतिरक्षा के कई तरीके हैं जो वायरसों के वैश्विक खतरों को टालने में मददगार हो सकते हैं। हमारा बचाव स्वयं वायरस के विकास के इतिहास में निहित है। अपने मेज़बान को खत्म करना वायरस की जीत नहीं हार ही होगी।" लेडरबर्ग आगे कहते हैं, "जब विकास का संतुलन साम्य स्थापित होगा, तब हम अपने आंतरिक व बाह्य परजीवियों के साथ इस धरती पर रहेंगे, कभी-कभी ये परजीवी हमें अपेक्षाकृत ज़्यादा हिंसक संक्रमण से बचाएंगे भी। उस साम्य की शर्तें शायद उतनी सुखद न हों। वर्तमान ज्ञान से तो ऐसी कोई उम्मीद नहीं बंधती कि हम इस प्रतिस्पर्धा को खत्म कर सकेंगे। इस दौरान हमें और हमारे परजीवियों को साथ-साथ रहना है और दोनों को इसकी कीमत तकलीफों के रूप में चुकानी है।"

सार्स के मामले में सार्वजनिक स्वास्थ्य और जैव चिकित्सा अनुसंधान दोनों की प्रतिक्रिया काफी त्वरित व कार्यक्षम रही। यदि ऐसे ही संक्रमण किसी अधिक घनी आबादी वाले क्षेत्र में, किसी कम व्यवस्थित क्षेत्र में या किसी कम विकसित देश में होंगे तो शायद नुकसान ज़्यादा होगा। मगर तब शायद अंतिम फैसला प्रकृति का ही होगा। हो सकता है कि रोगकारी जीवों से सतत संपर्क के कारण ऐसे इलाकों में प्रतिरोध क्षमता ज़्यादा विकसित हो चुकी हो। लेडरबर्ग के शब्दों में, "विरोधाभास यह है कि कभी-कभी स्वच्छता व टीकाकरण में सुधार के कारण हम ज़्यादा जोखिमग्रस्त हो जाते हैं क्योंकि इनके कारण मानव आबादी सूक्ष्मजीवी अनुभवों से नादान रह जाती है।" ***(स्रोत फीचर्स)***